International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 15
November 2017

लोकगीतों में समरस भाव

डॉ मंजु तॅवर
एसोसिऐट प्रोफेसर, सत्यवति कॉलेज
अशोक विहार,
नई दिल्ली

विषयः लोकगीत और समरस भाव

हिन्दी में सामान्य अर्थ में दो शब्द चलते हैं – 1. जन और दूसरा लोक। इनका उपयोग ऐसे भ किया जाता है कि इनका अर्थ एक ही है जबकि इनमें थोड़ा अंतर करना होगा क्योंकि जन में सब कुछ आ जाता है जबकि लोक का एक विषिष्ट अर्थ देता है। अंग्रेजी में लोक के लिए फोक शब्द है कहीं कहीं से फोल्क भी लिखते हैं और अक्सर ऐसा जताया भी जाता हे कि ये लोक अंग्रेजी से हिन्दी में आय। वस्तुथिति इससे एकदम भिन्न है क्योंकि यूरोप के फोक से हमारे लोक की अवधारणा एकदम अलग है। यूरोप के फोक में लगभग अभिजात्य वर्ग की वह रचनाषिलता है जिसमें गीत, किस्से कहानियॉ, नाटक आदि शामिल किये जा सकते हैं। जो दोनों प्रकार के हो सकते हैं। और यह आवष्यक नहीं कि उस अभिजात्य वर्ग की रचनाषिलता व्यक्त हो जबकि लोक का सबसे बड़ा गुण उसकी रचनाषिलता को व्यक्ति करना है हमारे यहां कभी कभी एक भ्रम सा होत है कि लोक का संबंध केवल गांव, निर्धन, कजोर या केवल स्त्रियों से है। वैसे तो लोक की परिभाषा देना न केकवल मुष्किल बल्कि असंभव सा है फिर भी यदि खुले चक्षुओं से देखे तों हमरा लोक न केवल गांवों, कस्बों , नगर निर्धन कमजोर स्त्रियों में पलता हे जहां निम्रण नहीं बल्कि सुजन होता है। निर्माण और सृजन में फर्क है। निर्माण में सामग्री की आवष्यकता होती है जबकि सृजन बिल्कुल सहज भाव से हमारे मन के सुख दुख हर्ष उल्लास करूण प्रेम आदि के अलावा पदी नाले, झरने सर्दी गर्मी बरसात आदि प्रकृति के रूपों से अपना आकर स्वतः ही सृजित होता और रमता रहता है।

इससे भी आगे बढ़कर हम कह सकते हैं कि समाज के सभ्यता तथाकथित अभिजात्य वर्ग में समय के साथ बदलाव ाते रहते हैं जबकि लोक लोकषैली, लोक साहित्य या लोक संस्कृति में बदलाव बहुत कम या धीमी गति से ाता है और उनमें ऐसा बदलाव नहीं होता ि कवह परंपरा से बिल्कुल अलग हो जाए ओर एकदम आधुनिक कहलाया जाने लगे। और य दि ऐसा बदलाव होगा तो वह लोग नहीं रह जायेगा वह कृतिम हो जएगा। इसीलिए यदि काकेइ व्यकित यह कहता हे ि कवह लोकगीत लिखता है। क्योंकि लोक गीत व साहित्य की प्रथम शर्त ही यह है कि उसको कोइ रचनाकार नहीं होता, किसी के नाम से वचह चीज होती ही नहीं । वह जो कुछ भी और जिस भी रूप में सृजित हुआ है, सबसे पहले किसके मुंह से निकला होगा, यह हम नहीं जानते। वह तो एक मुंह से दूसरे मंह दूसरे तीसरे, तीसरे से चौथे की तरफ आग ही आगे बढ़ता जाता है, इसलिए उसकी प्रकृति में स्भावतः कुछ चीजें जुड़ती जाती हैं कुछ परिवर्तन ीाी होता चलता हे। एक गीत किसी स्त्री ने एक जगह गाया, कईयों ने सुना, फिर किसी ने कहीं और गाया, तो जरूरी नहीं कि उसे पूरा याद हो ओर हू बहू गा दे, अपने हिसाब से पंक्त्यिों ओर थोड़ी इधर उधर भी की जाती है यही परिवर्तन है, जो निरंतर होता रहता है। इस पर कोइ यहय दावा नहीं कर सकता है कि उसका गीत क्यों बदल दिया गया। लेकिन साहित्य में ऐसा नहीं है चाहे उसे लोक साहित्य ही क्यों न नाम दिया जाये । यही लोक ` लोकतांत्रिक होने का सबसे बड़ा आधार भी है। इसीलिए यह आकस्मिक नहीं है किमुझे अनेकों गीत ऐसे मिले, जो रूडी बोली, भोजपुरी, राजस्थानी, हरियाणवी आदि अइनेकों बोलयों मं लीगभग समान भाव वाले हैं। लेकिन चूंकि ये वाचक परंपरा से ही प्राप्त किये जा सकते थे तो अनेकों जगहों पर कई स्त्रियों ने अपने गीतों को बांटने से इनकार भी किया। उनका कहना था कि उनके गीत पुराने हो जायेंगे। अनेकों स्थानों पर भाषा संबंधी सदस्या भी आड़े आई। चूंकि मैंने फिल्मी लहजों और लोक शैली गीतों के बाजारीकरण की गिरफ्त में आये गीतों व पैरोदियों को अपने संचयन से अलग रखने का प्रयास किया तो युवा पीढ़ी का सहयोग लगभग नगण्य रहा। वैसे भी मेरे केन्द्र में लौकिक गीतों की अपेक्षा अनुष्ठानिक गीत अधिक थे, ऐसे गीत जिन्हें अक्सर हमरे समाज के संस्कारिक विधानों को कराने वाली दो समृद्व परंपरा वाली पीढ़ी है । जो अधिकांषतः ज्यादा पीड़ी लिखी नहीं है, इनमें परिवारों की बुजुर्ग महिलाओं के अलावा ब्रहामणी नाईन कम्हारिन आदि पेषे वाली महिलायें ही हें। जो बाल बोलकर इन गीतों को बताती रही ओर हम लिखते रहे। और हमेषा यह आषंका सताती रही कि यदि अभी हर गीतों को संजोया नहीं गया तो हमारी ये लोक संपदा सदैव के लिये हमारे

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 15
November 2017

हाथों से फिसल जायेगी और हम हाथर मलते रह जोयंगे। हमारी आने वाली पीढ़यां इस अमूल्य धरोहर से वंचित रह जायेंगी।

भारतीय लोक की वह संपदा जहां गाली को संगल गारी के नाम से जाना जाता है भारतीय यलोक में विषेषकर खड़ी बोली भोजपुरी लोक गीतों तिलक विवाह जैसे मांगलिक अवसरों पर स्त्रियां गारी गाकर आत्मसुख व नुभूति करती हैं विषेषकर कन्या पक्ष की ओर से वर पक्ष व समधियों को भात के मौके पर वधु के मायके वालों को पुत्र जन्म कें जच्चा को जच्चा गीतों में आदि मौकों पर किनतु इस इअनुभूति का साधारीकरण सुनने और सुनाने का दोनों में होता है इसलिए कबोई बुरा नहीं मानता। गारी होकर भी नीकी लगती है क्योंकि ये गारी समाजिक मर्यादा की सर्जना है और हास विनोद की सर्जक भी मधुर की लट्ठमार होली भी कुछ इसी भाव की अभिव्यक्ति है।

संदर्भ ग्रंथः

भारतीय लोक साहित्य, परख और परिदृष्य – विद्या सिन्हा

उत्तराखंड का लोक कथायें – हरिसुमन बिष्ट